RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper

हिन्दी भाषा के स्वरुप–निर्धारण में पत्र पत्रिकाओं का योगदान

डॉ0 संजय कुमार मिश्रा

हिन्दी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

परिचय

हिन्दी भाषा के विकास के स्तर पर 1900 से 1947 ई. तक की पत्रिकाता का सबसे प्रमुख योगदान हिन्दी भाषा के स्वरुप–निर्धारण के धरातल पर रहा है। भारतेन्दु–युग की पत्रकारिता ने हिन्दी भाषा का प्रसार तो बहुत किया था, किन्तु वह उसका स्वरूप निर्धारित नहिं कर पायी थी। द्विवेदी युग की पत्रकारिता ने भाषा के स्वरुप–निर्धारण को चुनौती के रुप में स्वीकार किया। यही कारण है कि तद्युगीन पत्रकारिता में हिन्दी भाषा के परिष्कार तथा परिमार्जन पर अपेक्षाकृत अधिक जोर दिया गया। इनमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका आर्चाय महावीर प्रसाद द्विवेदी ने निभायी। उनकी इस महत्वपूर्ण देन को रेखांकित करते हुए बाबू श्याम सुन्दर दास नें लिखा है– "द्विवेदी जी का महत्व उनके लेखों में नहीं है। उनका महत्व विशेष कर इसी बात में है कि उन्होंने भाषा को परिमार्जित और सुन्दर रूप देने का सफलतापूर्वक उद्योग किया है।" यह सब उन्होने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में किया। सरस्वती के अतिरिक्त उस युग की लगभग संपूर्ण पत्रकारिता ने हिन्दी भाषा के स्वरूप–निर्धारण में योगदान किया। इस कार्य की प्रेरणा राष्ट्रीय की चेतना में निहित थी, जिसका भाषा एक महत्वपूर्ण अंग था। हिन्दी पत्रकारिता के पुराने पन्ने प्रमाण हैं कि पत्रकारिता की भिति तैयार करने वाली पीढ़ी का भाषा स्वाभिमान कितना प्रखर था और स्वभाषा–उन्नति की उनमें कितनी उत्कट लालसा थी। उनमें पुष्ट विवके था कि हिन्दी की शुद्धता और उत्थान का प्रशन हिन्दी भाषा समाज के उत्थान का प्रशन है। इस प्रकार ज्वलंत जातीय प्रश्न के रूप में, सांस्कृति चुनौती के रूप में भाषा के सलग के पुरानी पीढ़ी को पत्रकारों ने अपेक्षित गुरुता दी थी। और जातीय जागरण की इस विशिष्ट सारणि से साध ना–यात्रा करते उन्हें विकट चुनैतियों से टकराना पड़ा। भाषा के धरातल की धवलता की रक्षा और समृद्धि के लिए चुनौती रचनी पड़ी,

'सरस्वती' उस युग की सबसे प्रमुख पत्रिका थी। सरस्वती ने भारतेन्दु–युग की भाषा परम्परा को विकसित करने के साथ–साथ उसके स्वरूप को स्थिर करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। हिन्दी भाषा के रूप को स्थिर करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। हिन्दी भाषा के रूप को स्थिर करने में सबसे बड़ी बाधा थी, हिन्दी लेखकों का व्याकरण के नियमों के प्रति अवहेलना भाव। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ज्यादातर ऐसे व्यक्ति साहित्य–सृजन में लगे जिनके शिक्षा–दीक्षा उदू, फारसी या अंग्रेजी माध्यम से हुई थीं इन लोगो ने हिन्दी भाषा की प्रकृति को समझे बिना ही हिन्दी लेखन का काम शुरू कर दिया। इससे हिन्दी भाषा का प्रचार तथा साहित्य–निर्माण का कार्य तो खूब हुआ लेकिन भाषा का रूप कमजोर, विकारयुक्त और ढीला होता गया। शब्द–चयन, वाक्य विन्यास, विराम चिह्न, कारक चिह्न, लिंग भेद आदि पर इनल`खकों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। द्विवेदी युग के प्रभम दशक में सजग लेखकों तथा संपादको ने हिन्दी भाषा के क्षेत्र में फैली इस अव्यवस्था पर ध्यान दिया। परिणामस्वरूप ऐसी कई पत्र–पत्रिकाओं का आरंभ हुआ जिनका मुख्य उदेश्य ही हिन्दी भाषा के स्वरूप को स्थिर करना था।

समालोचक (अगस्त 1902) के पहले ही अंक में 'हिन्दी की चिंदी शीर्षक से लंबा संपादकीय निकला। इसमें लेखकों की हिन्दी भाषा के क्षेत्र में 'मनमानी खैंचातानी' की चर्चा करने के बाद 'नगरी प्रचारिणी पत्रिका', 'उचितवक्ता', 'ब्राह्मण', सारसुधानिधि', 'श्रीवैंकटेश्वर समाचार', 'आनन्द कादंबिनी', आदि की भाषागत त्रुटियों की कटु आलोचना की गई है। हिन्दी भाषा की इस अराजकता के कारणें पर प्रकाश डालते हुए संपादक ने लिखा है –

"आजकल अंग्रेजी भषा के पंडित हिन्दी सूंधकर हिन्दी समाचारपत्रों के लेखक तथा संपादक बने हैं, हिन्दी को उसी अंग्रेजी के कायदे–कानून के रस्से में बाँधकर घसीटते जाते हैं। जो लेखक या गुजराती हैं, जिन्होंने माता से मारवाड़ी अथवा गुजराती भाषा में ही मुँह फाड़ना सीखा है, जो मारवाड़ी या गुजराती ही में पाल पोसकर बड़े किए गए वह सयाने होने पर लेखक वा संपादक हुए तो हिन्दी में भी अपनी मातृभाषा के मुहावरे डालने लगते हैं जिनकी मातृभाषा बंगाली है, जिनको सदा बंगभाषा का संसर्ग रहा हैं, वह हिन्द लिखते समय अपनी हिन्दी में बंगभाषा की गंधि छोड़ते हैं, जो फारसी अरबी के पंडित हैं, जिनके घर उर्दू इमुल्ला बोली जाती है, वह हिन्दी में सब फारसी कवायद की चलती मानते हैं। जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सभ्य वा उसके कार्यकर्ताओं की प्रचलित पत्रिकाओं से संबंध रखने वाले हैं वह उसी के चलाए नियमो पर हिन्दी लिखते हैं। वह नियम सही हैं या नहीं इसका विचार नहीं करते।"

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved *ISSN:* 2349-7637 (Online)

इस प्रकार तद्युगीन पत्रकारिता हिन्दी भाषा की दशा को सुधारने हेतु चिन्तित थी। हिन्दी भाषा की प्रकृति और उसकी विकास परंपरा को समझे बिना, हिन्दी भाषा की दशा को नहीं सुधारा जा सकता था। परिणामतः बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हिन्दी लेखकों की भाषा का मूल्यांकन व्याकरण की जमीन पर किया गया। भाषा की शुद्धता रचना के मूल्यांकन की प्रमुख कसौटी बन गई। शुद्ध भाषा के लिए व्याकाण के नियमों की जानकारी आवश्यक थी। पत्रों में इस पर विस्तृत–विमर्श शुरू हुआ जिसने कई बार व्यापक विवाद एवं नोंक–झोंक का भी रूप ले लिया। भाषा विषयक नोंक–झोंक से पत्रकारिता के पुराने पन्नों की ललित मुद्रा ने खड़ी बोली गद्य के परिमार्जन और हिन्दी भाषी समाज के भाषा–संस्कार में विधायक भूमिका निभाई। पुराने पत्रकारों में विवके था कि अपने विचार और समाचार–परिवेशन तक ही उनका दायित्व सीमित नहीं है, अपने पाठकों की रूचि को सुसंस्कृत करना, विकृति के प्रति सचेतक और संस्कृति–सम्मुख करना एवं उनके भाषा संस्कार के धरातल को उन्नत करना उनके गुरूतर दायित्व का विशिष्ट फल है। यह दायित्व बोध प्रायः विवाद की सृष्टि कर देता था जो चेतना–संवेदना को विविध रूपों में समृद्धतर करता था।

'भारतमित्र' के माध्यम से भाषा और व्याकरण सम्बन्धी जो विवाद शुरू हुआ था उसका ऐतिहासिक महत्व है। यद्यपिइ स वाद–विवाद में व्यक्तिगत आक्रोश भी दिखाई पड़ता है और एक दुसरे ने एक दूसरे के व्यक्तित्व पर भी आक्रमण किये। किन्तु इस संघर्ष की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि व्याकरण–व्यवस्था को नया आयाम मिला जो समद्धिसूचक है।

इस ऐतिहासिक वाद–विवाद का आरंभ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के एक लेख से हुआ जिसका शीर्षक था–"भाषा और व्याकरण"। इस लेख में द्विवेदी जी ने भारतेन्दु और–मंडल के अनेक लेखको की भाषा–संबंधी अशुद्धियों को उजागर किया था। द्विवेदीजी के इस लेख पर कई विद्वानों को आपति थी। सर्वप्रथम बालमुकुन्द गुप्त ने इस पर आपति की। उन्होंने 'आत्माराम' के नाम से 'भारतमित्र' में इस संबंध में कई लेख लिखे और द्विवेदी जी का विरोध किया। इससे व्याकरण को लेकर वादविवाद शरू हो गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को पसंद करने वाले लोगों को बाल मुकुंद गुप्त की आपतियाँ नागवार गुजरी। पं. गोविन्दनारायण मिश्र ने बालमुकुन्द गुप्त पर आक्रमण करते हुए 'आत्माराम की टेंटें' नामक लेख 'बंगवासी' में लिखा। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में 'कल्लू अल्हदूत' के नाम से 'सरगौ नरक ठिकानौ नाहिं' शीर्षक लेख कइस कड़ी में लिखा जिनमें उनका क्षोभ अत्यन्त स्पष्ट था। द्विवेदी जी ने लिखा– "उतर समालोचनाओं का दिया जाता है, प्रलोपों का नहीं। जिसे बुबांदानी, कवायददानी और जुबांदानी की सोहबत से मिले हुए ज्ञानीपन का त्रिनीपन का त्रिदोष ज्वर चढ़ा हुआ है, उसकी कल्नाओं का उतर ही क्या कुत्सापूर्ण–निस्सार बर्राने का भी क्या कोई उतर होता है।" बालमुकुन्द गुप्त के भी समर्थन में पं. माधव प्रसाद मिश्र, पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि विद्वान सामने आए। इस विवाद में भाग लेनेवाले पत्रों में सरस्वती, भारतमित्र, हिन्दी बंगवासी, समालोचक और वैश्योपकारक प्रमुख थे। इस वाद–विवाद के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा और व्याकरण को एक नई व्यवस्था मिली।

निस्संदेह हिन्दी भाषा के स्वरूप–निर्धारण में सबसे महत्वपूर्ण योगदान आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनकी पत्रिका 'सरस्वती' का है। आचार्य द्विवेदी हिन्दी के मानकीकरण के प्रति बहुत चिन्तित थे। उन्होंने अपने लेख 'भाषा और व्याकरण' में हिन्दी भाषा की प्रयोगगत विभिन्नताओं को दूर कर उनमें एकरूपता लाने पर जोर दिया था तथा हिन्दी में सर्वमान्य व्याकरण की आवश्यकता पर बल दिया था जिसका कि हिन्दी में पूणैतया अभाव था। भाषा के लिए व्याकरण की जरूरत को रेखांकित करते हुए उन्होंने इस लेख में लिखा है –

"आहार और विहार के परिणाम को परिमित रखने और आराग्यशास्त्र के नियमों का उल्लंघन न करने से आदमी अधिक समय तक जीता रहता है, अल्पायु नहीं होता इसी तरह व्याकरण के नियमों से भाषा के कलेवर को दृढ़ करने से उसका भी आयुर्बल बढ़ जाता है।"

निष्कर्ष

हिन्दी भाषा के स्वरूप–निर्धारण का प्रश्न उस युग में संस्कृत, उर्दू एवं ब्रजभाषा से जुड़ा हुआ था। हिन्दी भाषा की प्रथम समस्या यह थी कि हिन्दी भाषा को कहां तक संस्कृतगर्भित किया जाए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की मान्यता थी कि यद्यपि संस्कृत हिन्दी भाषा की जननी है लेकिन हिन्दी भाषा की अपनी जातीय विशेषताएं हैं, जिनके कारण वह संस्कृत से भिन्न है। अतः संस्कृत व्याकरण के नियमों को हिन्दी पर लादता उचित नहीं है। हिन्दी में तत्सम शब्दों के प्रयास को लेकर द्विवेदीजी की मान्यता थी कि जन शिक्षा के लिए सीधी सरल भाषा जरूरी होती है अतः हिन्दी भाषा में क्लिष्ट एवं अप्रचलित संस्कृत शब्दो का प्रयोग नहीं होना चाहिए। इस संबंध में उन्होंने लिखा है:–

"हिन्दी में संस्कृत के सरल शब्दों और ऐसे विदेशी शब्द जिन्हे सब समझते हैं, प्रयुक्त होने चाहिए। शब्द चिरस्थायी, सबके समझते लायक होने चाहिए। बस, कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका संस्कृत में कंछ अर्थ है पर हिन्दी में वे दूसरे ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, ऐसे शब्द सर्वथा त्याज्य हैं।"

हिन्दी के स्वरूप–निर्धारण से जुड़ा दूसरा प्रश्न उर्दू से उसके संबंधों को लेकर था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी इन दोनों के भेद को अस्वीकार करते थे। उन्होंने लिखा –

"जिस समय ब्रजभाषा के रूप में हिन्दी अपना आधिपत्य जमा रही थी, उसी समय उसकी एक दूसरी शाखा उससे पृथक हो गई। इस शाखा का नाम उर्दू है। कोई भिन्न भाषा नहीं है। वह भी हिन्दी ही है। उसमें चाहे कोई जितने फारसी, अरबी और तुर्की शब्द भर दे, उसकी क्रियाएँ हिन्दी ही की बनी रहती हैं, उसकी रचना हिन्दी ही के व्याकरण का अनुसरण करती हैं।"

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. समालोचक, अगस्त 1902
2. सरस्वती, 11 नवम्बर 1905 ई.
3. सरस्वती, नवम्बर 1905 ई.
4. वही,
5. सरस्वती, जुलाई 1901 ई.